आधुनिक कवियों की प्रमुख रचनाएं

बलराम वर्मा

भाषा प्रकाशन

आधुनिक कवियों की प्रमुख रचनाएं

आधुनिक कवियों की प्रमुख रचनाएं

बलराम वर्मा

भाषा प्रकाशन
नई दिल्ली – 110002

© प्रकाशक

I.S.B.N. : 978-81-323-7626-2

प्रथम संस्करण : 2022

भाषा प्रकाशन

22, प्रकाशदीप बिल्डिंग, अंसारी रोड,
दरियागंज, नई दिल्ली – 110002

द्वारा वर्ल्ड टेक्नोलॉजीज नई दिल्ली के सहयोग से प्रकाशित

गीत संख्या 1

निशा की, धो देता राकेश
चाँदनी में जब अलकें खोल,
कली से कहता था मधुमास
'बता दो मधुमदिरा का मोल';
झटक जाता था पागल वात
धूलि में तुहिन-कणों के हार,
सिखाने जीवन का सङ्गीत
तभी तुम आये थे इस पार!

बिछाती थी सपनों के जाल
तुम्हारी वह करुणा की कोर,
गई वह अधरों की मुसकान
मुझे मधुमय पीड़ा में बोर;
भूलती थी मैं सीखे राग
बिछलते थे कर बारम्बार,
तुम्हें तब आता था करुणेश!
उन्हीं मेरी भूलों पर प्यार!

गए तब से कितने युग बीत
हुए कितने दीपक निर्वाण,
नहीं पर मैंने पाया सीख
तुम्हारा सा मनमोहन गान!
नहीं अब गाया जाता देव!
थकी अँगुली, हैं ढीले तार,
विश्ववीणा में अपनी आज
मिला लो यह अस्फुट झङ्कार!

गीत संख्या 2

रजतकरों की मृदुल तूलिका
से ले तुहिनविन्दु सुकुमार,
कलियों पर जब आँक रहा था
करुण कथा अपनी संसार ;

तरल हृदय की उच्छवासें जब
भोले मेघ लुटा जाते,
अन्धकार दिन की चोटो पर
अञ्जन बरसाने आते !

मधु की बूँदों में छलके जब
तारकलोकों के शुचि फूल,
विधुर हृदय के मृदु कम्पन सा
सिहर उठा वह नीरव कूल ;

मूक प्रणय से, मधुर व्यथा से,
स्वप्नलोक के से आह्वान,
वे आये चुपचाप सुनाने
तब मधुमय मुरली की तान !

चल चितवन के दूत सुना
उनके, पल में रहस्य की बात,
मेरे निर्निमेष पलकों में
मचा गए क्या क्या उत्पात !

जीवन है उन्माद तभी से
निधियाँ प्राणों के छाले,
माँग रहा है विपुल वेदना-
के मन प्याले पर प्याले !

पीड़ा का साम्राज्य सब गया
उस दिन दूर क्षितिज के पार,
मिटना था निर्वाण जहाँ
नीरव रोदन था पहरेदार !

कैसे कहती हो सपना है
अलि ! उस मूक मिलन की बात ?
भरे हुए अब तक फूलों में
मेरे आँसू उनके हास !

— —

गीत संख्या 3

निश्वासों का नीड़ निशा का
बन जाता जब शयनागार,
लुट जाते अभिराम छिन्न
मुक्तावलियों के बन्दनवार,

तब बुझते तारों के नीरव नयनों का यह हाहाकार,
आँसू से लिख लिख जाता है 'कितना अस्थिर है संसार !'

हँस देता जब प्रात, सुनहरे
अञ्चल में बिखरा रोली,
लहरों का बिछलन पर जब
मचली पड़ती किरणें भोली,

तब कलियाँ चुपचाप उठाकर पल्लव के घूँघट सुकुमार,
छलकी पलकों से कहती हैं 'कितना मादक है संसार !'

देकर सौरभ दान पवन से
कहते जब मुरझाये फूल,
'जिसके पथ में बिछे वही
क्यों भरता इन आँखों में धूल'?

'अब इनमें क्या सार' मधुर जब गाती भौंरों की गुञ्जार,
मर्मर का रोदन कहता है 'कितना निष्ठुर है संसार !'

स्वर्ण वर्ण से दिन लिख जाता
जब अपने जीवन की हार,
गोधूली नभ के आँगन में
देती अगणित दीपक बार,

हँसकर तब उस पार तिमिर का कहता बढ़ बढ़ पारावार,
'बीते युग, पर बना हुआ है अब तक मतवाला संसार !'

स्वप्नलोक के फूलों से कर
अपने जीवन का निर्माण,
'अमर हमारा राज्य' सोचते
है जब मेरे पागल प्राण,

आकर तब अज्ञात देश से जाने किसकी मृदु झङ्कार,
गा जाती है करुण स्वरों में 'कितना पागल है संसार !'

———

गीत संख्या 4

रजनी ओढ़े जाती थी
झिलमिल तारों की जाली,
उसके बिखरे वैभव पर
जब रोती थी उजियाली;

शशि को छूने मचली सी
लहरों का कर कर चुम्बन,
बेसुध तम की छाया का
तटनी करती आलिङ्गन !

अपनी जब करुण कहानी
कह जाता है मलयानिल,
आँसू से भर जाता तब—
सूखा अवनी का अञ्चल;

पल्लव के डाल हिंडोले
सौरभ सोता कलियों में,
छिप छिप किरणें आतीं जब
मधु से सींची गलियों में !

आँखों में रात बिता जब
विधु ने पीला मुख फेरा,
आया फिर चित्र बनाने
प्राची में प्रात चितेरा;

कन कन में जब छाई थी
वह नवयौवन की लाली,
मैं निर्धन तब आई ले
सपनों से भर कर डाली !

जिन चरणों की नखज्योती—
ने हीरकजाल लजाये,
उन पर मैंने धुँधले से
आँसू दो चार चढ़ाये !

इन ललचाई पलकों पर
पहरा जब था व्रीड़ा का,
साम्राज्य मुझे दे डाला
उस चितवन ने पीड़ा का !!

उस सोने के सपने को
देखे कितने युग बीते !
आँखो के कोप हुए हैं
मोती बरसा कर रीते !

अपने इस सूनेपन की
मैं हूँ रानी मतवाली,
प्राणों का दीप जला कर
करती रहती दीवाली ।

मेरी आहें सोती हैं
इन ओठों की ओटों में,
मेरा सर्वस्व छिपा है
इन दीवानी चोटों में !!

चिन्ता क्या है, हे निर्मम !
बुझ जाये दीपक मेरा,
हो जायेगा तेरा ही
पीड़ा का राज्य अँधेरा !

———

गीत संख्या 5

मिल जाता काले अंजन में सन्ध्या की आँखों का राग,
जब तारे फैला फैला कर सूने में गिनता आकाश,
उसकी खोई सी चाहों में
घुट कर मूक हुई आहों में !

झूम झूम कर मतवाली सी पिये वेदनाओं का प्याला,
प्राणों में रुँधी निश्वासें आती ले मेघों की माला;
उसके रह रह कर रोने में
मिल कर विद्युत् के खोने में !

धीरे से सूने आँगन में फैला जब जाती हैं रातें
भर भर के ठंढी साँसों में मोती से आँसू की पातें;
उनकी सिहराई कम्पन में
किरणों के प्यासे चुम्बन में !

जाने किस बीते जीवन का संदेशा दे मन्द समीरण,
छू देता अपने पंखों से मुर्झाये फूलों के लोचन;
उनके फीके मुस्काने में
फिर अलसाकर गिर जाने में ।

आँखों की नीरव भिक्षा में आँसू के मिटते दागों में,
ओंठों की हँसती पीड़ा में आहों के बिखरे त्यागों में,
कन कन में बिखरा है निर्मम !
मेरे मानस का सूनापन !

गीत संख्या 6

मैं अनन्त पथ में लिखती जो
सस्मित सपनों की बातें,
उनको कभी न धो पायेंगी
अपने आँसू से रातें !

उड़ उड़ कर जो धूलि करेगी
मेघों का नभ में अभिषेक,
अमिट रहेगी उसके अञ्चल—
में मेरी पीड़ा की रेख !

तारों में प्रतिविम्बित हो
मुस्कायेंगी अनन्त आँखें,
होकर सीमाहीन शून्य में
मँडरायेंगी अभिलाषें !

वीणा होगी मूक बजाने—
वाला होगा अन्तर्धान,
विस्मृति के चरणों पर आकर
लोटेंगे सौ सौ निर्वाण !

जब असीम से हो जायेगा
मेरी लघु सीमा का मेल,
देखोगे तुम देव ! अमरता
खेलेगी मिटने का खेल !

गीत संख्या 7

छाया की आँखमिचौनी
मेघों का मतवालापन,
रजनी के श्याम कपोलों
पर ढरकीले श्रम के कन;

फूलों की मीठी चितवन
नभ की ये दीपावलियाँ,
पीले मुख पर सन्ध्या के
वे किरणों की फुलझड़ियाँ !

बिधु की चाँदी की थाली
मादक मकरन्द भरी सी
जिसमें उजियारी रातें
लुटती घुलती मिसरी सी;

भिक्षुक से फिर जाओगे
जब लेकर यह अपना धन
करुणामय तब समझोगे
इन प्राणों का मँहगापन !

क्यों आज दिये देते हो
अपना मरकत सिंहासन ?
यह है मेरे मरु मानस
का चमकीला सिकताकन !

आलोक यहाँ लुटता है
बुझ जाते हैं तारागण,
अविराम जला करता है
पर मेरा दीपक सा मन ।

जिसकी विशाल छाया में
जग बालक सा सोता है,
मेरी आँखों में वह दुख
आँसू बन कर खोता है !

जग हँस कर कह देता है
मेरी आँखें हैं निर्धन,
इनके बरसाये मोती
क्या वह अब तक पाया गिन ?

मेरी लघुता पर आती
जिस दिव्य लोक को व्रीड़ा,
उनके प्राणों से पूछो
वे पाल सकेंगे पीड़ा ?

उनसे कैसे छोटा है
मेरा यह भिक्षुक जीवन ?
उनमें अनन्त करुणा है
इसमें असीम सूनापन !

गीत संख्या 8

घोर तम छाया चारों ओर
घटायें घिर आईं घन घोर;
वेग मारुत का है प्रतिकूल
हिले जाते हैं पर्वतमूल:
गरजता सागर बारम्बार,
कौन पहुँचा देगा उस पार ?
तरङ्गें उठीं पर्वताकार
भयङ्कर करतीं हाहाकार,
अरे उनके फेनिल उच्छ्वास
तरी का करते हैं उपहास;
हाथ से छूट गई पतवार,
कौन पहुँचा देगा उस पार ?
ग्रास करने नौका, स्वच्छन्द
घूमते फिरते जलचरवृन्द;
देखकर काला सिन्धु अनन्त
हो गया हा साहस का अन्त !
तरङ्गें हैं उत्ताल अपार,
कौन पहुँचा देगा उस पार !
बुझ गया वह नक्षत्र प्रकाश
चमकती जिसमें मेरी आश;
रैन बोली सज कृष्ण दुकूल
विसर्जन करो मनोरथ फूल;
न लाये कोई कर्णाधार;
कौन पहुँचा देगा उस पार ?

सुना था मैंने इसके पार
बसा है सोने का संसार,
जहाँ के हँसते विहग ललाम
मृत्यु छाया का सुनकर नाम !
धरा का है अनन्त शृंगार
कौन पहुँचा देगा उस पार ?

जहाँ के निर्झर नीरव गान
सुना करते अमरत्व प्रदान
सुनाता नभ अनन्त झङ्कार
बजा देता उर के सब तार;
भरा जिसमें असीम सा प्यार
कौन पहुँचा देगा उस पार ?

पुष्प में है अनन्त मुस्कान
त्याग का है मारुत में गान;
सभी में है स्वर्गीय विकास
वही कोमल कमनीय प्रकाश;
दूर कितना है वह संसार !
कौन पहुँचा देगा उस पार !

सुनाई किसने पल में आन
कान में मधुमय मोहक तान ?
तरी को ले जावो मँझधार
डूब कर हो जाओगे पार;
विसर्जन ही है कर्णधार;
वही पहुँचा देगा उस पार !

गीत संख्या 9

थकी पलकें सपनों पर डाल
व्यथा में सोता हो आकाश,
छलकता जाता हो चुपचाप
बादलों के उर से अवसाद;

वेदना की वीणा पर देव
शून्य गाता हो नीरव राग,
मिलाकर विश्वासों के तार
गूँथती हो जब तारे रात;

उन्हीं तारक फूलों में देव
गूँथना मेरे पागल प्राण—
हठीले मेरे छोटे प्राण!

किसी जीवन की मीठी याद
लुटाता हो मतवाला प्रात,
कली अलसाई आँखें खोल
सुनाती हो सपने की बात;

खोजते हों खोया उन्माद
मन्द मलयानिल के उच्छ्वास,
माँगती हो आँसू के बिन्दु
मूक फूलों की सोती प्यास;

पिला देना धीरे से देव
उसे मेरे आँसू सुकुमार—
सजीले से आँसू के हार!

मचलते उद्‌गारों से खेल
उलझते हों किरणों के जाल
किसी की छूकर ठंढी साँस
सिहर जाती हों लहरें बाल;

चकित सा सूने में संसार
गिन रहा हो प्राणों के दाग,
सुनहली प्याली में दिन मान;
किसी का पीता हो अनुराग;

ढाल देना उसमें अनजान
देव मेरा चिर संचित राग—
अरे यह मेरा मादक राग !

मत्त हो स्वप्निल हाला ढाल
महानिद्रा में पारावार,
उसी की धड़कन में तूफान
मिलाता हो अपनी झंकार;

झकोरों से मोहक संदेश
कह रहा हो छाया का मौन
सुप्त आहों का दीन विषाद
पूछता हो आता है कौन ?

बहा देना आकर चुपचाप
तभी यह मेरा जीवन फूल--
सुभग मेरा मुरझाया फूल !

गीत संख्या 10

जो मुखरित कर जाती थी
मेरा नीरव आवाहन,
मैंने दुर्बल प्राणों की
वह आज सुला दी कम्पन !
थिरकन अपनी पुतली की
भारी पलकों में बाँधी,
निस्पन्द पड़ी हैं आँखें
बरसानेवाली आँधी ।
जिसके निष्फल जीवन ने
जल जल कर देखी राहें,
निर्वाण हुआ है देखो
वह दीप लुटाकर चाहें !
निर्बोध घटाओं में छिप
तड़पन चपला की सोती,
झञ्झा के उन्मादों में
घुलती जाती बेहोशी !
करुणामय को भाता है
तम के परदों में आना,
हे नभ की दीपावलियो !
तुम पल भर को बुझ जाना !

गीत संख्या 11

स्वर्ग का था नीरव उच्छ्वास
देवबीणा का टूटा तार,
मृत्यु का क्षणभंगुर उपहार
रत्न वह प्राणों का शृंगार;
नई आशाओं का उपवन
मधुर वह था मेरा जीवन!

क्षीरनिधि की थी सुत तरङ्ग
सरलता का न्यारा निर्झर,
हमारा वह सोने का स्वप्न
प्रेम की चमकीली आकर,
शुभ्र जो था निर्मेघ गगन
सुभग मेरा सङ्गी जीवन!

अलक्षित आ किसने चुपचाप
सुना अपनी सम्मोहन तान,
दिखाकर माया का साम्राज्य
बना डाल इसको अज्ञान?
मोह-मदिरा का आस्वादन
किया क्यों हे भोले जीवन!

तुम्हें ठुकरा जाता नैराश्य
हँसा जाती है तुमको आश,
नचाता मायावी संसार
लुभा जाता स्वप्नों का हार;
मानते विष को सञ्जीवन
मुग्ध मेरे भूले जीवन!

न रहता भौंरों का आह्वान
नहीं रहता फूलों का राज्य,
कोकिला होती अन्तर्धान
चला जाता प्यारा ऋतुराज;
असम्भव है चिर सम्मेलन
न भूलो क्षणभंगुर जीवन!

विकसते मुरझाने को फूल
उदय होता छिपने को चन्द,
शून्य होने को भरते मेघ
दीप जलता होने को मन्द;
यहाँ किसका अनन्त यौवन?
अरे अस्थिर छोटे जीवन!

छलकती जाती है दिन रैन
लबालब तेरी प्याली मीत,
ज्योति होती जाती है क्षीण
मौन होता जाता सङ्गीत;
करो नयनों का उन्मीलन
क्षणिक है मतवाले जीवन!

शून्य से बन जाओ गम्भीर
त्याग की हो जाओ झंकार,
इसी छोटे प्याले में आज
डुबा डालो सारा संसार
लजा जायें यह मुग्ध सुमन
बनो ऐसे छोटे जीवन!

सखे! यह है माया का देश
क्षणिक है मेरा तेरा सङ्ग,
यहाँ मिलता काँटों में बन्धु!
सजीला सा फूलों का रङ्ग;
तुम्हें करना विच्छेद सहन
न भूलो हे प्यारे जीवन!

जिस दिन नीरव तारों से,
बोलीं किरणों की अलकें,
'सो जाओ अलसाई हैं
सुकुमार तुम्हारी पलकें' !

जब इन फूलों पर मधु की
पहली बूँदें बिखरी थीं,
आँखें पङ्कज की देखीं
रवि ने मनुहार भरी सीं !

दीपकमय कर डाला जब
जलकर पतङ्ग ने जीवन,
सीखा बालक मेघों ने
नभ के आँगन में रोदन;

उजियारी अवगुण्ठन में
विधु ने रजनी को देखा,
तब से मैं ढूँढ़ रही हूँ
उनके चरणों की रेखा !

मैं फूलों में रोती वे
बालारुण में मुस्काते
मैं पथ में बिछ जाती हूँ
वे सौरभ में उड़ जाते !

वे कहते हैं उनको मैं
अपनी पुतली में देखूँ,
यह कौन बता जायेगा
किसमें पुतली को देखूँ ?

मेरी पलकों पर रातें
बरसा कर मोती सारे,
कहतीं 'क्या देख रहे हैं
अविराम तुम्हारे तारे'?

तम ने इन पर अञ्जन से
बुन बुन कर चादर तानी,
इन पर प्रभात ने फेरा
आकर सोने का पानी!

इन पर सौरभ की साँसें
लुट लुट जातीं दीवानी,
यह पानी में बैठी हैं
बन स्वप्न लोक की रानी!

कितनी बीतीं पतझारें
कितने मधु के दिन आये,
मेरी मधुमय पीड़ा को
कोई पर छूँढ़ न पाये!

झिप झिप आँखें कहती हैं
'यह कैसी है अनहोनी।
हम और नहीं खेलेंगी
उनसे यह आँखमिचौनी'!

अपने जर्जर अञ्चल में
भरकर सपनों की माया,
इन थके हुए प्राणों पर
छाई विस्मृति की छाया!

मेरे जीवन की जागृति!
देखो फिर भूल न जाना,
जो वे सपना बन आवें
तुम चिर निद्रा बन जाना!

मधुरिमा के, मधु के अवतार
सुधा से, सुषमा से, छविमान,
आँसुओं में सहमें अभिराम
तारकों से हे मूक अजान!
सीखकर मुस्काने की बान
कहाँ आये हो कोमल प्राण?

स्निग्ध रजनी से लेकर हास
रूप से भर कर सारे अङ्ग,
नये पल्लव का घूँघट डाल
अलूता ले अपना मकरन्द,
ढूँढ़ पाया कैसे यह देश
स्वर्ग के हे मोहक सन्देश?

रजत किरणों से नैन पखार
अनोखा ले सौरभ का भार,
छलकता लेकर मधु का कोष,
चले आये एकाकी पार
कहो क्या आये हो पथ भूल,
मञ्जु छोटे मुस्काते फूल?

उषा के छू आरक्त कपोल
किलक पड़ता तेरा उन्माद,
देख तारों के बुझते प्राण
न जाने क्या आ जाता याद?
हेरती है सौरभ की हाट
कहो किस निर्मोही की बाट?

चाँदनी का शृङ्गार समेट
अधखुली आँखों की यह कोर
लुटा अपना यौवन अनमोल
ताकती किस अतीत की ओर ?
जानते हो यह अभिनव प्यार
किसी दिन होगा कारागार !

कौन वह है सम्मोहन राग
खींच लाया तुमको सुकुमार ?
तुम्हें भेजा जिसने इस देश
कौन वह है निष्ठुर कर्तार ?
हँसो पहनो काँटों के हार
मधुर भोलेपन के संसार !

गीत संख्या 12

वे मुस्काते फूल, नहीं—
जिनको आता है मुरझाना,
वे तारों के दीप नहीं—
जिनको भाता है बुझ जाना;

वे नीलम के मेघ, नहीं—
जिनकी है घुल जाने की चाह,
वह अनन्त ऋतुराज, नहीं—
जिसने देखी जाने की राह !

वे सूने से नयन, नहीं—
जिनमें बनते आँसू-मोती,
वह प्राणों की सेज, नहीं—
जिनमें बेसुध पीड़ा सोती;

ऐसा तेरा लोक, वेदना
नहीं, नहीं जिसमें अवसाद,
जलना जाना नहीं, नहीं—
जिसने जाना मिटने का स्वाद!

क्या अमरों का लोक मिलेगा
तेरी करुणा का उपहार ?
रहने दो हे देव ! अरे
यह मेरा मिटने का अधिकार !

गीत संख्या 13

चुभते ही तेरा अरुण बान !
बहते कन कन से फूट फूट, मधु के निर्झर से सजल गान !
इन कनकरश्मियों में अथाह,
लेता हिलोर तम सिन्धु जाग;
बुद्बुद् से बह लचते अपार,
उसमें विहगों के मधुर राग;
बनती प्रवाल का मृदुल कूल, जो क्षितिज-रेख थी कुहर-म्लान !
नव कुन्द-कुसुम से मेघ-पुञ्ज,
बन गये इन्द्रधनुषी वितान;
दे मृदु कलियों की चटक, ताल
हिम-विन्दु नचाती तरलप्राण;
धो स्वर्ण प्रात में तिमिरगात, दुहराते अलि निशि-मूक तान !
सौरभ का फैला केश जाल
करतीं समीरपरियाँ विहार;
गीलो केसर मद झूम झूम,
पीते तितली के नव कुमार;
मर्मर का मधुसंगीत छेड़, देते हैं हिल पल्लव अजान !
फैला अपने मृदु स्वप्नपंख
उड़ गई नींदनिशि क्षितिज-पार;
अधखुले दृगों के कञ्जकोष—
पर छाया विस्मृति का खुमार;
रँग रहा हृदय ले अश्रु हास, यह चतुर चितेरा सुधिविहान !

गीत संख्या 14

शून्यता में निद्रा की बन,
उमड़ आते ज्यों स्वप्निल घन,
पूर्णता कलिका की सुकुमार,
छलक मधु में होती साकार !

हुआ त्यों सूनेपन का भान,
प्रथम किसके उर में अम्लान ?
और किस शिल्पी ने अनजान,
विश्वप्रतिमा कर दी निर्माण ?

काल सीमा के संगम पर,
मोम सी पीड़ा उज्ज्वल कर,
उसे पहनाई अवगुण्ठन,
हास औ, रोदन से बुनबुन !

कनक से दिन मोती सी रात,
सुनहली साँझ गुलाबी प्रात;
मिटाता रँगता बारम्बार,
कौन जग का यह चित्राधार ?

शून्य नभ में तम का चुम्बन,
जला देता असंख्य उडुगण;
बुझा क्यों उनको जाती मूक,
भोर ही उजियाले की फूँक ?

रजतप्याले में निद्रा ढाल,
बाँट देती जो रजनी बाल,
उसे कलियों में आँसू घोल,
चुकाना पड़ता किसको मोल ?

पोंछती जब हौले से वात,
इधर निशि के आंसू अवदात,
उधर क्यों हँसता दिन का बाल,
अरुणिमा से रञ्जित कर गाल !

कली पर अलि का पहला गान,
थिरकता जब बन मृदु मुस्कान,
विकल सपनों के हार पिघल,
ढुलकते रहते क्यों प्रतिपल ?

गुलालों से रवि का पथ लीप,
जला पश्चिम में पहला दीप,
विहँसती सन्ध्या भरी सुहाग,
दृगों से झरता स्वर्णपराग;

उसे तम की बढ़ एक झकोर,
उड़ा कर ले जाती किस ओर ?
अथक सुषमा का सृजन विनाश,
यही क्या जग का श्वासोच्छ्वास ?

किसी की व्यथासिक्त चितवन,
जगाती कण कण में स्पन्दन;
गूँथ उनकी साँसों के गीत,
कौन रचता विराट सङ्गीत ?

प्रलय बनकर किसका अनुताप,
डुबा जाता उसको चुपचाप ?

आदि में छिप आता अवसान,
अन्त में बनता नव्य विधान;
सूत्र ही है क्या यह संसार,
गुँथे जिसमें सुख दुख जयहार ?

गीत संख्या 15

रजतरश्मियों की छाया में धूमिल घन सा वह आता;
इस निदाघ से मानस में करुणा के स्रोत बहा जाता !

उसमें मर्म छिपा जीवन का,
एक तार अगणित कम्पन का,
एक सूत्र सबके बन्धन का,
संसृति के सूने पृष्ठों में करुणकाव्य वह लिख जाता !

वह उर में आता बन पाहुन,
कहता मन से 'अब न कृपण बन',
मानस की निधियाँ लेता गिन,
दृग-द्वारों को खोल विश्वभिक्षुक पर, हँस बरसा आता !

यह जग है विस्मय से निर्मित,
मूक पथिक आते जाते नित,
नहीं प्राण प्राणों से परिचित,
यह उनका संकेत नहीं जिसके बिन विनिमय हो पाता !

मृगमरीचिका के चिर पथ पर,
सुख आता प्यासों के पग धर,
रुद्ध हृदय के पट लेता कर,
गर्वित कहता 'मैं मधु हूँ मुझसे क्या पतझर का नाता' ?

दुख के पद छू बहते झर झर,
कण कण से आँसू के निर्झर,
हो उठता जीवन मृदु उर्वर,
लघु मानस में वह असीम जग को आमन्त्रित कर लाता !

गीत संख्या 16

चिर तृप्ति कामनाओं का
कर जाती निष्फल जीवन,
बुझते ही प्यास हमारी
पल में विरक्ति जाती बन!
पूर्णता यही भरने की
ढुल, कर देना सूने घन;
सुख की चिर पूर्ति यही है
उस मधु से फिर जावे मन!

चिर ध्येय यही जलने का
ठंढी विभूति बन जाना;
है पीड़ा की सीमा यह
दुख का चिर सुख हो जाना!
मेरे छोटे जीवन में
देना न तृप्ति का कण भर;
रहने दो प्यासी आँखें
भरती आँसू के सागर!

तुम मानस में बस जाओ
छिप दुख की अवगुंठन से;
मैं तुम्हें ढूँढ़ने के मिस
परिचित हो लूँ कण कण से!
तुम रहो सजल आँखों की
सित असित मुकुरता बनकर;
मैं सब कुछ तुमसे देखूँ
तुमको न देख पाऊँ पर!

चिर मिलनविरह-पुलिनों की
सरिता हो मेरा जीवन;
प्रतिपल होता रहता हो
युग कूलों का आलिङ्गन !
इस अचल क्षितिज-रेखा से
तुम रहो निकट जीवन के;
पर तुम्हें पकड़ पाने के
सारे प्रयत्न हों फीके।

द्रुत पंखोंवाले मन को
तुम अन्तहीन नभ होना;
युग उड़ जावें उड़ते ही
परिचित हो एक न कोना !
तुम अमर प्रतीक्षा हो मैं
युग विरहपथिक का धीमा;
आते जाते मिट जाऊँ
पाऊँ न पंथ की सीमा

तुम हो प्रभात की चितवन
मैं विधुर निशा बन आऊँ;
काटूँ वियोग-पल रोते
संयोग-समय छिप जाऊँ !
आवे बन मधुर मिलन-क्षण
पीड़ा की मधुर कसक सा;
हँस उठे विरह ओठों में—
प्राणों में एक पुलक सा !

पाने में तुमको खोऊँ
खोने में समझूँ पाना;
यह चिर अतृप्ति हो जीवन
चिर तृष्णा हो मिट जाना !
गूँथें विषाद के मोती
चाँदी सी स्मित के डोरे;
हों मेरे लक्ष्य-क्षितिज की
आलोक—तिमिर दो छोरें !

गीत संख्या 17

कुमुद-दल से वेदना के दाग़ को
पोंछती जब आँसुओं से रश्मियाँ,
चौंक उठतीं अनिल के निश्वास छू
तारिकायें चकित सी अनजान सी,
तब बुला जाता मुझे उस पार जो,
दूर के संगीत सा वह कौन है ?

शून्य नभ पर उमड़ जब दुखभार सी
नैश तम में सघन छा जाती घटा,
बिखर जाती जुगुनुओं की पाँति भी
जब सुनहले आँसुओं के हार सी,
तब चमक जो लोचनों को मूँदता,
तडित् की मुस्कान में वह कौन है ?

अवनि-अम्बर की रुपहली सीप में
तरल मोती सा जलधि जब काँपता,
तैरते घन मृदुल हिम के पुञ्ज से
ज्योत्स्ना के रजतपारावार में,
सुरभि बन जो थपकियाँ देता मुझे,
नींद के उच्छ्वास सा, वह कौन है ?

जब कपोल गुलाब पर शिशुप्रात के
सूखते नक्षत्र जल के बिन्दु से,
रश्मियों की कनक-धारा में नहा
मुकुल हँसते मोतियों का अर्घ्य दे,
स्वप्न-शाला में यवनिका डाल जो
तब दृगों को खोलता वह कौन है ?

किसी नक्षत्र-लोक से टूट
विश्व के शतदल पर अज्ञात,
ढुलक जो पड़ी ओस की बूँद
तरल मोती सा ले मृदु गात,
नाम से जीवन से अनजान,
कहो क्या परिचय दे नादान !

किसी निर्मम कर का आघात
छेड़ता जब वीणा के तार,
अनिल के चल पंखों के साथ
दूर जो उड़ जाती झङ्कार,
जन्म ही उसे विरह की रात,
सुनावे क्या वह मिलत प्रभात !

चाह शैशव सा परिचयहीन
पलक-दोलों में पल भर झूल,
कपोलों पर जो ढुल चुपचाप
गया कुम्हला आँखों का फूल,
एक ही आदि अन्त की साँस—
कहे वह क्या पिछला इतिहास !

मूक हो जाता वारिद-घोष
जगा कर जब सारा संसार,
गूँजती, टकराती असहाय
धरा से जो प्रतिध्वनि सुकुमार,
देश का जिसे न निज का भान,
बतावे क्या अपनी पहिचान !

सिन्धु को क्या परिचय दे दव :
बिगड़ते बनते बीचि-विलास !
क्षुद्र हैं मेरे बुद्-बुद् प्राण
तुम्हीं में सृष्टि तुम्हीं में नाश !
मुझे क्यो देते हो अभिराम !
थाह पाने का दुस्तर काम ?
जन्म ही जिसको हुआ वियोग
तुम्हारा ही तो हूँ उच्छ्वास,
चुरा लाया जो विश्व समीर
वही पीड़ा की पहली साँस !
छोड़ क्यों देते बारम्बार,
मुझे तम से करने अभिसार ?
छिपा है जननी का अस्तित्व
रुदन में शिशु के अर्थविहीन,
मिलेगा चित्रकार का ज्ञान
चित्र की ही जड़ता में लीन ;
दृगो में छिपा अश्रु का हार,
सुभग है तेरा ही उपहार !

गीत संख्या 18

तुहिन के पुलिनों पर छविमान,
किसी मधुदिन की लहर समान,
स्वप्न की प्रतिमा पर अनजान,
वेदना का ज्यों छाया दान,
विश्व में यह भोला जीवन—
स्वप्न जागृति का मूक मिलन,
बाँध अञ्चल में विस्मृत धन,
कर रहा किसका अन्वेषण ?

धूलि के कण में नभ सी चाह,
बिन्दु में दुख का जलधि अथाह,
एक स्पन्दन में स्वप्न अपार,
एक पल असफलता का भार;
साँस में अनुतापों का दाह,
कल्पना का अविराम प्रवाह ;
वही तो हैं इसके लघु प्राण,
शाप वरदानों के सन्धान !

भरे उर में छवि का मधुमास,
दृगों में अश्रु अधर में हास,
ले रहा किसका पावस प्यार,
विपुल लघु प्राणों में अवतार !
नील नभ का असीम विस्तार !
अनल के धूमिल कण दो चार,
सलिल से निर्भर वीचि-विलास,
मन्द मलयानिल से उच्छ्वास,

धरा से ले परमाणु उधार,
किया किसने मानव साकार ?
दृगों में सोते हैं अज्ञात;
निदाघों के दिन पावस रात;
सुधा का मधु हाला का राग,
व्यथा के घन अतृप्त की आग !
छिपे मानस में पवि नवनीत,
निमिषि की गति निर्झर के गीत,
अश्रु की उर्मि हास का बात,
कुहू का तम माधव का प्रात !
हो गये क्या उर में वपुमान,
क्षुद्रता रज की नभ का मान,
स्वर्ग की छवि रौरव की छाँह,
शीत हिम की बाड़व का दाह,
और—यह विस्मय का संसार,
अखिल वैभव का राजकुमार;
धूलि में क्यों खिलकर नादान,
उसी में होता अन्तर्धान ?

काल के प्याले में अभिनव,
ढाल जीवन का मधुआसव,
नाश के हिमअधरों से मौन,
लगा देता है आकर कौन ?
बिखर कर कन कन के लघुप्राण
गुनगुनाते रहते यह तान,
"अमरता है जीवन का ह्रास,
मृत्यु जीवन का चरम विकास" !

दूर है अपना लक्ष्य महान,
एक जीवन पग एक समान;
अलक्षित परिवर्तन की डोर,
खींचती हमें इष्ट की ओर!
छिपा कर उर में निकट प्रभात,
गहनतम होती पिछली रात;
सघन वारिद अम्बर से छूट,
सफल होते जल-कण में फूट!

स्निग्ध अपना जीवन कर क्षार,
दीप करता आलोक-प्रसार,
गला कर मृत्पिण्डों में प्राण,
बीज करता असंख्य निर्माण!
सृष्टि का है यह अमिट विधान,
एक मिटने में सौ वरदान,
नष्ट कब अणु का हुआ प्रयास,
विफलता में है पूर्ति-विकास!

गीत संख्या 19

कह दे माँ क्या अब देखूँ !

देखूँ खिलती कलियाँ या
प्यासे सूखे अधरों को,
तेरी चिर यौवन-सुषमा
या जर्जर जीवन देखूँ !

देखूँ हिमहीरक हँसते
हिलते नीले कमलों पर,
या मुरझाई पलकों से
झरते आँसू-कण देखूँ !

सौरभ पी पी कर बहता
देखूँ यह मन्द समीरण,
दुख की घूँटें पीतीं या
ठंढी साँसों को देखूँ !

खेलूँ परागमय मधुमय
तेरी बसन्त-छाया में,
या झुलसे संतापों से
प्राणों का पतझर देखूँ !

मकरन्द-पगी केसर पर
जीती मधुपरियाँ ढूँढूँ,
या उरपञ्जर में कण को
तरसे जीवनशुक देखूँ !

कलियों की घनजाली में
छिपती देखूँ लतिकायें,
या दुर्दिन के हाथों में
लज्जा की करुणा देखूँ !

बहलाऊँ नव किसलय के—
झूले में अलिशिशु तेरे,
पाषाणों में मसले या
फूलों से शैशव देखूँ !

तेरे असीम आँगन की
देखूँ जगमग दीवाली,
या इस निर्जन कोने के
बुझते दीपक को देखूँ !

देखूँ विहगों का कलरव
घुलता जल की कलकल में,
निस्पन्द पड़ी वीणा से
या बिखरे मानस देखूँ ?

मृदु रजतरश्मियाँ देखूँ
उलझी निद्रा-पंखो में,
या निर्निमेष पलकों में
चिन्ता का अभिनय देखूँ !

तुझमें अम्लान हँसी है
इसमें अजस्र आँसू जल,
तेरा वैभव देखूँ या
जीवन का क्रन्दन देखूँ !

गीत संख्या 20

दिया क्यों जीवन का वरदान ?
इसमें है स्मृतियों की कम्पन,
सुप्त व्यथाओं का उन्मीलन;
स्वप्नलोक की परियाँ इसमें
भूल गईं मुस्कान !

इसमें है झंझा का शैशव,
अनुरञ्जित कलियों का वैभव;
मलय पवन इसमें भर जाता
मृदु लहरों के गान !

इन्द्रधनुष सा घन-अञ्चल में,
तुहिनबिन्दु सा किसलय दल में,
करता है पल पल में देखो
मिटने का अभिमान !

सिकता में अङ्कित रेखा सा,
बात-विकम्पित दीपशिखा सा;
काल-कपोलों पर आँसू सा
ढुल जाता हो म्लान !

गीत संख्या 21

नवमेघों को रोता था
जब चातक का बालक मन,
इन आँखों में करुणा के
घिर घिर आते थे सावन !
किरणों को देख चुराते
चित्रित पंखों की माया,
पलकें आकुल होती थीं
तितली पर करने छाया !

जब अपनी निश्वासों से
तारे पिघलातीं रातें,
गिन गिन धरता था यह मन
उनके आँसू की पाँतें !
जो नव लज्जा जाती भर
नभ में कलियों की लाली,
वह मृदु पुलकों से मेरी
छलकाती जीवन-प्याली

घिर कर अविरल मेघों से
जब नभमंडल झुक जाता,
अज्ञात वेदनाओं से
मेरा मानस भर आता !
गर्जन के द्रुत तालों पर
चपला का बेसुध नर्तन;
मेरे मन-बालशिखी में
सङ्गीत मधुर जाता बन !

किस भाँति कहूँ कैसे थे
वे जग से परिचय के दिन ?
मिश्री सा घुल जाता था
मन छूते ही आँसू-कन !
अपनेपन की छाया तब
देखी न मुकुरमानस ने;
उसमें प्रतिबिम्बित सबके
सुख दुख लगते थे अपने !

तब सीमाहीनों से था
मेरी लघुता का परिचय;
होता रहता था प्रतिपल
स्मित आँसू का विनिमय !
परिवर्तन-पथ में दोनो
शिशु से करते थे क्रीड़ा;
मन माँग रहा था विस्मय
जग माँग रहा था पीड़ा !

यह दोनों दो ओरें थी
संसृत की चित्रपटी की;
उस बिन मेरा दुख सूना
मुझ बिन वह सुषमा फीकी !
किसने अनजाने आकर
वह लिया चुरा भोलापन ?
उस विस्मृत के सपने से
चौकाया छूकर जीवन !

जाती नवजीवन बरसा
जो करुण घटा कण कण में
निस्पन्द पड़ी सोती वह
अब मन के लघु बन्धन में !
स्मित गनकर नाच रहा है
अपना लघु सुख अधरों पर,
अभिनय करता पलकों में
अपना दुख आँसू बनकर !

अपनी लघु निश्वासों में
अपनी साधों की कम्पन,
अपने सीमित मानस में
अपने सपनों का स्पन्दन !
मेरा अपार वैभव ही
मुझसे है आज अपरिचित,
हो गया उदधि जीवन का
सिकता-कण में निर्वासित !

स्मित ले प्रभात आता नित
दीपक दे सन्ध्या जाती
दिन ढलता सोना बरसा
निशि मोती दे मुसकाती !
अस्फुट मर्मर में अपनी
गति की कलकल उलझाकर,
मेरे अनन्तपथ में नित
संगीत बिछाते निर्झर !

यह साँसें गिनते गिनते
नभ की पलकें झप जातीं,
मेरे विरक्त अञ्चल में
सौरभ समीर भर जाती !
मुख जोह रहे हैं मेरा
पथ में कब से चिर सहचर,
मन रोया ही करता क्यों
अपने एकाकीपन पर ?

अपनी कण कण में बिखरीं
निधियाँ न कभी पहिचानी;
मेरा लघु अपनापन है
लघुता की अकथ कहानी !
मैं दिन को ढूँढ़ रही हूँ
जुगनू की उजियाली में,
मन माँग रहा है मेरा
सिकता हीरक प्याली में !

गीत संख्या 22

प्राणों के अन्तिम पाहुन !
चाँदनी-धुला अञ्जन सा, विद्युत-मुस्कान बिछाता,
सुरभित समीरपंखों से उड़ जो नभ में घिर आता,
वह वारिद तुम आना बन !

जो श्रान्त पथिक पर रजनी छाया सी आ मुस्काती,
भारी पलकों में धीरे निद्रा मधु ढुलकाती,
त्यों करना बेसुध जीवन !

अज्ञातलोक से छिप छिप ज्यों उतर रश्मियाँ आतीं,
मधु पीकर प्यास बुझाने फूलों के उर खुलवातीं,
छिप आना तुम छायातन !

कितनी करुणाओं का मधु कितनी सुषमा की लाली,
पुतली में छान भरी है मैंने जीवन की प्याली,
पीकर लेना शीतल मन !

हिम से जड़ नीला अपना निस्पन्द हृदय ले आना,
मेरा जीवनदीपक धर उसको सस्पन्द बनाना,
हिम होने देना यह तन !

कितने युग बीत गये इन निधियों का करते संचय,
तुम थोड़े से आँसू दे इन सबको कर लेना क्रय,
अब हो व्यापार-विसर्जन !

है अन्तहीन लय यह जग पल पल है मधुमय कम्पन,
तुम इसकी स्वरलहरी में धोना अपने श्रम के कण,
मधु से भरना सूनापन।

पाहुन से आते जाते कितने सुख के दुख के दल,
वे जीवन के क्षण क्षण में भरते असीम कोलाहल,
तुम बन आना नीरव क्षण !

तेरी छाया में दिव को हँसता है गर्वीला जग,
तू एक अतिथि जिसका पथ हैं देख रहे अगणित दृग,
साँसो में घड़ियाँ गिन गिन !

गीत संख्या 23

अलि कैसे उनको पाऊँ !

वे आँसू बनकर मेरे, इस कारण ढुल ढुल जाते ,
इन पलकों के बन्धन में, मैं बाँध बाँध पछताऊँ !

मेघों में विद्युत् सी छवि, उनकी बन कर मिट जाती,
आँखों की चित्रपटी में, जिसमें मैं आँक न पाऊँ !

वे आभा बन खो जाते, शशिकिरणों की उलझन में,
जिसमें उसको कण कण में, ढूँढूँ पहचान न पाऊँ !

सोते सागर की धड़कन बन लहरों की थपकी से ,
अपनी यह करुण कहानी, जिसमें उनको न सुनाऊँ !

वे तारकबालाओं की, अपलक चितवन बन आते ,
जिसमें उनकी छाया भी, मैं छू न सकूँ अकुलाऊँ !

वे चुपके से मानस में, आ छिपते उच्छ्वासें बन ,
जिसमें उनको साँसों में, देखूँ पर रोक न पाऊँ !

वे स्मृति बन कर मानस में, खटका करते हैं निशिदिन,
उनकी इस निष्ठुरता को, जिसमें मैं भूल न जाऊँ !

गीत संख्या 24

प्रिय इन नयनों का अश्रु-नीर !

दुख से आबिल सुख से पंकिल,
बुद्‌बुद् से स्वप्नों से फेनिल,
बहता है युग युग से अधीर !

जीवनपथ का दुर्गमतम तल,
अपनी गति से कर सजल सरल,
शीतल करता युग तृषित तीर!

इसमें उपजा यह नीरज सित,
कोमल कोमल लज्जित मीलित,
सौरभ सी लेकर मधुर पीर !

इसमें न पङ्क का चिह्न शेष,
इसमें न ठहरता सलिल-लेश,
इसको न जगाती मधुप-भीर !

तेरे करुणा-कण से विलसित,
हो तेरी चितवन से विकसित,
छू तेरी श्वासों का समीर

धीरे धीरे उतर क्षितिज से
आ वसन्त-रजनी !
तारकमय नव वेणीबन्धन,
शीशफूल कर शशि का नूतन,
रश्मिवलय सित घन-अवगुण्ठन,
मुक्ताहल अभिराम बिछा दे
चितवन से अपनी !
पुलकती आ वसन्त-रजनी !
मर्मर की सुमधुर नूपुरध्वनि,
अलि-गुञ्जित पद्मा की किंकिणि,
भर पदगति में अलस तरंगिणि,
तरल रजत की धार बहा दे
मृदु स्मित से सजनी !
विहँसती आ वसन्त-रजनी !
पुलकित स्वप्नों की रोमावलि,
कर में हो स्मृतियों की अञ्जलि,
मलयानिल का चल दुकूल अलि !
घिर छाया सी श्याम, विश्व को
आ अभिसार बनी !
सकुचती आ वसन्त-रजनी !
सिहर सिहर उठता सरिता-उर,
खुल खुल पड़ते सुमन सुधा भर,
मचल मचल आते पल फिर फिर,
सुन प्रिय की पदचाप हो गई
पुलकित यह अवनी !
सिहरती आ वसन्त-रजनी !

पुलक पुलक उर, सिहर सिहर तन,
आज नयन आते क्यों भर भर?
सकुच सलज खिलती शेफाली;
अलस मौलश्री डाली डाली,
बुनते नव प्रवाल कुञ्जों में,
रजत श्याम तारों से जाली;
शिथिल मधु-पवन, गिन-गिन मधुकण,
हरसिंगार झरते हैं झर झर!
पिक की मधुमय वंश बोली,
नाच उठी सुन अलिनी भोली;
अरुण सजल पाटल बरसाता,
तम पर मृदु पराग की रोली;
मृदुल अंक धर, दर्पण सा सर,
आँज रही निशि दृगइन्दीवर!
आँसू बन बन तारक आते,
सुमन हृदय में सेज बिछाते;
कम्पित वानीरों के वन भी
रह रह करुण विहाग सुनाते;
निद्रा उन्मन कर कर विचरण,
लौट रही सपने संचित कर!
जीवन जल-कण से निर्मित सा,
चाह इन्द्रधनु से चित्रित सा;
सजल मेघ सा धूमिल है जग,
चिर नूतन सकरुण पुलकित सा;
तुम विद्युत् बन, आओ पाहुन!
मेरी पलकों में पग धर धर!

तुम्हें बाँध पाती सपने में !
तो चिरजीवन-प्यास बुझा
लेती उस छोटे क्षण अपने में !

पावस-घन सी उमड़ बिखरती,
सरद निशा सी नीरव घिरती
धो लेती जग का विषाद
ढुलते लघु आँसू-कण अपने में !

मधुर राग बन विश्व सुलाती,
सौरभ बन कण कण बस जाती,
भरती मैं संसृति का क्रन्दन
हँस जर्जर जीवन अपने में !

सबकी सीमा बन सागर सी,
हो असीम आलोक लहर सी,
तारों मय आकाश छिपा
रखती चंचल तारक अपने में !

शाप मुझे बन जाता वर सा,
पतझर मधु का मास अजर सा,
रचती कितने स्वर्ग एक
लघु प्राणों के स्पन्दन अपने में !

साँसें कहतीं अमर कहानी,
पल पल बनता अमिट निशानी,
प्रिय ! मैं लेती बाँध मुक्ति
सौ सौ लघुतम बन्धन अपने में !

———

गीत संख्या 25

कौन तुम मेरे हृदय में ?

कौन मेरी कसक में नित
मधुरता भरता अलक्षित ?
कौन प्यासे लोचनों में
घुमड़ घिर झरता अपरिचित ?

स्वर्णस्वप्नों का चितेरा
नींद के सूने निलय में !
कौन तुम मेरे हृदय में ?

अनुसरण निश्वास मेरे
कर रहे किसका निरन्तर !
चूमने पदचिह्न किसके

लौटते यह श्वास फिर फिर ?
कौन बन्दी कर मुझे अब
बँध गया अपनी विजय में ?
कौन तुम मेरे हृदय में ?

एक करुण अभाव में चिर—
तृप्ति का संसार संचित ;
एक लघु क्षण दे रहा
निर्वाण के वरदान शत शत;

पा लिया मैंने किसे इस
वेदना के मधुर क्रय में ?
कौन तुम मेरे हृदय में ?

गूँजता उर में न जाने
दूर के संगीत सा क्या !
आज खो निज को मुझे
खोया मिला, विपरीतसा क्या !

क्या नहा आई विरह-निशि
मिलन-मधुदिन के उदय में ?
कौन तुम मेरे हृदय में ?

तिमिरपारावार में
आलोकप्रतिमा है अकम्पित;
आज ज्वाला से बरसता
क्यों मधुर घनसार सुरभित ?

सुन रही हूँ एक ही
झङ्कार जीवन में प्रलय में ?
कौन तुम मेरे हृदय में ?

मूक सुख दुख कर रहे
मेरा नया शृङ्गार सा क्या ?
झूम गर्वित स्वर्ग देता—
नत धरा को प्यार सा क्या ?

आज पुलकित सृष्टि क्या
करने चली अभिसार लय में ?
कौन तुम मेरे हृदय में ?

गीत संख्या 26

विरह का जलजात जीवन, विरह का जलजात !

वेदना में जन्म करुणा में मिला आवास;
अश्रु चुनता दिवस इसका अश्रु गिनती रात !
जीवन विरह का जलजात !

आँसुओं का कोष उर, दृग अश्रु की टकसाल;
तरल जल-कण से बने घन सा क्षणिक मृदु गात !
जीवन विरह का जलजात !

अश्रु से मधुकण लुटाता आ यहाँ मधुमास;
अश्रु ही की हाट बन आती करुण बरसात !
जीवन विरह का जलजात !

काल इसको दे गया पल-आँसुओं का हार;
पूछता इसकी कथा निश्वास ही में वात !
जीवन विरह का जलजात !

जो तुम्हारा हो सके लीलाकमल यह आज:
खिल उठे निरुपम तुम्हारी देख स्मित का प्रात !
जीवन विरह का जलजात !

गीत संख्या 27

बीन भी हूं मैं तुम्हारी रागिनी भी हूं !

नींद थी मेरी अचल निस्पन्द कण कण में,
प्रथम जागृति थी जगत के प्रथम स्पन्दन में;
प्रलय में मेरा पता पदचिह्न जीवन में,
शाप हूं जो बन गया वरदान बन्धन में;
कूल भी हूं कूलहीन प्रवाहिनी भी हूं !

नयन में जिसके जलद वह तृषित चातक हूं,
शलभ जिसके प्राण में वह निठुर दीपक हूं;
फूल को उर में छिपाये विकल बुलबुल हूं,
एक होकर दूर तन से छाँह वह चल हूं;
दूर तुमसे हूं अखंड सुहागिनी भी हूं !

आग हूं जिससे ढुलकते विन्दु हिमजल के,
शून्य हूं जिसको बिछे हैं पाँवड़े पल के;
पुलक हूं वह जो पला है कठिन प्रस्तर में,
हूं वही प्रतिबिम्ब जो आधार के उर में;
नील घन भी हूं सुनहली दामिनी भी हूं !

नाश भी हूं मैं अनन्त विकास का क्रम भी,
त्याग का दिन भी चरम आसक्ति का तम भी;
तार भी आघात भी झङ्कार की गति भी,
पात्र भी मधु भी मधुप भी मधुर विस्मृति भी;
अधर भी हूं और स्मित की चाँदनी भी हूं !

रूपसि तेरा घन-केश-पाश !
श्यामल श्यामल कोमल कोमल,
लहराता सुरभित केश-पाश !
नभगङ्गा की रजतधार में
धो आई क्या इन्हें रात ?
कम्पित हैं तेरे सजल अंग,
सिहरा सा तन है सद्यस्नात !
भीगी अलकों के छोरों से
चूतीं बूंदें कर विविध लास !
सौरभभीना झीना गीला
लिपटा मृदु अञ्जन सा दुकूल;
चल अञ्चल से झर झर झरते
पथ में जुगनू के स्वर्ण फूल;
दीपक से देता बार बार
तेरा उज्जवल चितवन-विलास !
उच्छ्वासित वक्ष पर चंचल है
वक-पाँतों का अरविन्द-हार;
तेरी निश्वासें छू भू को
बन बन जातीं मलयज बयार;
केकी-रव की नूपुर-ध्वनि सुन
जगती जगती की मूक प्यास !
इन स्निग्ध लटों से छा दे तन
पुलकित अङ्कों में भर विशाल;
मुक सस्मित शीतल चुम्बन से
अंकित कर इसका मृदुल भाल,
दुलरा दे ना बहला दे ना
यह तेरा शिशु जग है उदास !

तुम मुझ में प्रिय फिर परिचय क्या !

तारक में छवि प्राणों में स्मृति,
पलकों में नीरव पद की गति,
लघु उर में पुलकों की संसृति,

भर लाई हूँ तेरी चंचल
और करूँ जग में संचय क्या !

तेरा मुख सहास अरुणोदय,
परछाईं रजनी विषादमय,
यह जागृति वह नींद स्वप्नमय,

खेल खेल थक थक सोने दो
मैं समझूंगी सृष्टि प्रलय क्या !

तेरा अधर विचुम्बित प्याला,
तेरी ही स्मितमिश्रित हाला,
तेरा ही मानस मधुशाला,

फिर पूछूं क्यों मेरे साकी !
देते हो मधुमय विषमय क्या ?

रोम रोम में नन्दन पुलकित,
साँस साँस में जीवन शत शत,
स्वप्न स्वप्न में विश्व अपरिचित,
मुझमें नित बनते मिटते प्रिय !
स्वर्ग मुझे क्या, निष्क्रिय लय क्या ?

हारूं तो खोऊं अपनापन;
पाऊं प्रियतम में निर्वासन,
जीत बनूं तेरा ही बन्धन,

भर लाऊं सीपी में सागर
प्रिय ! मेरी अब हार विजय क्या ?

चित्रित तू मैं हूँ रेखाक्रम,
मधुर राग तू मैं स्वरसंगम,
तू असीम मैं सीमा का भ्रम,

काया छाया में रहस्यमय !
प्रेयसि प्रियतम का अभिनय क्या !

गीत संख्या 28

मधुर मधुर मेरे दीपक जल !
युग युग प्रतिदिन प्रतिक्षण प्रतिपल,
प्रियतम का पथ आलोकित कर !

सौरभ फैला विपुल धूप बन,
मृदुल मोम सा घुल रे मृदु तन !
दे प्रकाश का सिन्धु अपरिमित,
तेरे जीवन का अणु गल गल !

पुलक पुलक मेरे दीपक जल !

सारे शीतल कोमल नूतन,
माँग रहे तुझ से ज्वाला-कण;
विश्वशलभ सिर धुन कहता 'मैं
हाय न जल पाया तुझमें मिल' !

सिहर सिहर मेरे दीपक जल !

जलते नभ में देख असंख्यक,
स्नेहहीन नित कितने दीपक;
जलमय सागर का उर जलता;
विद्युत् ले घिरता है बादल !

विहंस विहंस मेरे दीपक जल !

द्रुम के अङ्ग हरित कोमलतम,
ज्वाला को करते हृदयङ्गम;
वसुधा के जड़ अन्तर में भी,
बन्दी है तापों की हलचल !

बिखर बिखर मेरे दीपक जल !

मेरी निश्वासों से द्रुततर,
सुभग न तू बुझने का भय कर;
मैं अञ्चल की ओट किये हूँ,
अपनी मृदु पलकों से चञ्चल !
सहज सहज मेरे दीपक जल !

सीमा ही लघुता का बन्धन,
है अनादि तू मत घड़ियाँ गिन;
मैं दृग के अक्षय कोषों से—
तुझमें भरती हूँ आँसू-जल !
सजल सजल मेरे दीपक जल !

तम असीम तेरा प्रकाश चिर,
खेलेंगे नव खेल निरन्तर;
तम के अणु अणु में विद्युत् सा—
अमिट चित्र अङ्कित करता चल !
सरल सरल मेरे दीपक जल !

तू जल जल जितना होता क्षय,
वह समीप आता छलनामय;
मधुर मिलन में मिट जाना तू—
उसकी उज्ज्वल स्मित में घुल खिल !
मन्दिर मन्दिर मेरे दीपक जल !
प्रियतम का पथ आलोकित कर !

गीत संख्या 29

मेरे हँसते अधर नहीं जग—
की आँसू-लड़ियाँ देखो !
मेरे गीले पलक छुओ मत
मुरझाई कलियाँ देखो !

हंस देता नव इन्द्रधनुष की स्मित में घन मिटता मिटता;
रँग जाता है विश्व राग से निष्फल दिन ढलता ढलता;
कर जाता संसार सुरभिमय एक सुमन झरता झरता;
भर जाता आलोक तिमिर में लघु दीपक बुझता बुझता;

मिटने वालों की है निष्ठुर !
बेसुध रँगरलियाँ देखो !

गल जाता लघु बीज असंख्यक नश्वर बीज बनाने को;
तजता पल्लव वृन्त पतन के हेतु नये विकसाने को;
मिटता लघु पल प्रिय देखो कितने युग कल्प मिटाने को;
भूल गया जग भूल विपुल भूलोंमय सृष्टि रचाने को;

मेरे बन्धन आज नहीं प्रिय,
संसृति की कड़ियाँ देखो !

श्वासें कहतीं 'आता प्रिय' निश्वास बताते वह जाता;
आँखों ने समझा अनजाना उर कहता चिर यह नाता;
सुधि से सुन 'वह स्वप्न सजीला क्षण क्षण नूतन बन आता;
दुख उलझन में राह न पाता सुख दृगजल में बह जाता;

मुझमें हो तो आज तुम्हीं 'मैं'
बन दुख की घड़ियाँ देखो !

गीत संख्या 30

कैसे संदेश प्रिय पहुँचाती !

दृगजल की सित मसि है अक्षय,
मसि-प्याली झरते तारक द्वय;
पल पल के उड़ते पृष्ठों पर,
सुधि से लिख श्वासों के अक्षर—

मैं अपने ही बेसुधपन में
लिखती हूँ कुछ, कुछ लिख जाती !

छायापथ में छाया से चल,
कितने आते जाते प्रति पल;
लगते उनके विभ्रम इंगित
क्षण में रहस्य क्षण में परिचित;

मिलता न दूत वह चिरपरिचित
जिसको उर का धन दे आती !

अज्ञात पुलिन से, उज्ज्वलतर,
किरणें प्रवाल तरणी में भर,
तम के नीलम-कूलों पर नित,
जो ले आती ऊषा सस्मित—

वह मेरी करुण कहानी में
मुसकानें अङ्कित कर जाती !

सज केसरपट तारक बेंदी,
दृग-अंजन मृदु पद में मेंहदी;
आती भर मदिरा से गगरी,
सन्ध्या अनुराग सुहाग भरी;
मेरे विषाद में वह अपने
मधुरस की बूँदें छलकाती!

डाले नव घन का अवगुण्ठन,
दृग-तारक में सकरुण चितवन,
पदध्वनि से सपने जाग्रत कर,
श्वासों से फैला मूक तिमिर,
निशि अभिसारों में आँसू से
मेरी मनुहारें धो जाती!

गीत संख्या 31

टूट गया वह दर्पण निर्मम !
उसमें हँस दी मेरी छाया,
मुझमें रो दी ममता माया,
अश्रुहास ने विश्व सजाया,
रहे खेलते आँखमिचौनी
प्रिय ! जिसके परदे में 'मैं' 'तुम' ।
अपने दो आकार बनाने,
दोनों का अभिसार दिखाने,
भूलों का संसार बसाने,
जो झिलमिल झिलमिल सा तुमने
हँस हँस दे डाला था निरुपम !
कैसा पतझर कैसा सावन,
कैसी मिलन विरह की उलझन,
कैसा पल घड़ियोंमय जीवन,
कैसे निशिदिन कैसे सुखदुख
आज विश्व में तुम हो या तम !
किसमें देख सँवारूँ कुन्तल,
अङ्गराग पुलकों का मल मल,
स्वप्नों से आँजूँ पलकें चल,
किस पर रीझूँ किससे रूठूँ
भर लूँ किस छवि से अन्तरतम ?
आज कहाँ मेरा अपनापन,
तेरे छिपने का अवगुण्ठन,
मेरा बन्धन तेरा साधन,
तुम मुझमें अपना सुख देखो
मैं तुममें अपना दुख प्रियतम !

कमलदल पर किरण अंकित
चित्र हूँ मैं क्या चितेरे ?

बादलों की प्यालियाँ भर चाँदनी के सार से,
तूलिका कर इन्द्रधनु तुमने रँगा उर प्यार से;
काल के लघु अश्रु से
धुल जायँगे क्या रंग मेरे ?

तडित् सुधि में, वेदना में करुण पावस-रात भी,
आँक सपनों में दिया तुमने वसन्त-प्रभात भी;
क्या शिरीष-प्रसून से
कुम्हलायँगे यह साज मेरे ?

है युगों का मूक परिचय देश से इस राह से,
हो गई सुरभित यहाँ की रेणु मेरी चाह से;
नाश के निश्वास से
मिट पायँगे क्या चिह्न मेरे ?

नाच उठते निमिष पल मेरे चरण की चाप से,
नाप ली निःसीमता मैंने दृगों के माप से;
मृत्यु के उर में समा क्या
पायँगे अब प्राण मेरे ?

आँक दी जग के हृदय में अमिट मेरी प्यास क्यों ?
अश्रुमय अवसाद क्यों यह पुलक-कम्पन-लास क्यों ?
मैं मिटूँगी! क्या अमर
हो जायँगे उपहार मेरे ?

मुस्काता संकेत भरा नभ
अलि क्या प्रिय आनेवाले हैं ?

विद्युत के चल स्वर्णपाश में बँध हँस देता रोता जलधर;
अपने मृदु मानस की ज्वाला गीतों से नहलाता सागर;
दिन निशि को, देती निशि दिन को
कनक-रजत के मधु-प्याले हैं !

मोती बिखरातीं नूपुर के छिप तारक-परियाँ नर्तन कर;
हिमकण पर आता जाता मलयानिल परिमल से अञ्जलि भर;
भ्रान्त पथिक से फिर फिर आते
विस्मित पल क्षण मतवाले हैं !

सघन वेदना के तम में सुधि जाती सुख सोने के कण भर;
सुरधनु नव रचतीं निश्वासें स्मित का इन भीगे अधरों पर;
आज आँसुओं के कोषों पर
स्वप्न बने पहरेवाले हैं !

नयन श्रवणमय श्रवण नयनमय आज हो रही कैसी उलझन !
रोम रोम में होता री सखि एक नया उर का सा स्पन्दन !
पुलकों से भर फूल बन गये
जितने प्राणों के छाले हैं !

गीत संख्या 32

झरते नित लोचन मेरे हों !

जलती जो युग युग से उज्ज्वल,
आभा से रच रच मुक्ताहल,
वह तारक-माला उनकी,
चल विद्युत के कङ्कण मेरे हों !

ले ले तरल रजत औ' कञ्चन,
निशिदिन ने लीपा जो आँगन,
वह सुषमामय नभ उनका,
पल पल मिटते नव घन मेरे हों !

पद्मराग-कलियों से विकसित,
नीलम के अलियों से मुखरित,
चिर सुरभित नन्दन उनका,
यह अश्रु-भार-नत तृण मेरे हों !

तम सा नीरव नभ सा विस्तृत,
हास रुदन से दूर अपरिचित,
वह सूनापन हो उनका,
यह सुखदुखमय स्पन्दन मेरे हों !

जिसमें कसक न सुधि का दंशन,
प्रिय में मिट जाने के साधन,
वे निर्वाण—मुक्ति उनके,
जीवन के शत बन्धन मेरे हों !

बुद्बुद् में आवर्त्त अपरिमित,
कण मे शत जीवन परिवर्तित,
हों चिर सृष्टि प्रलय उनके,
बनने मिटने के क्षण मेरे हों !

सस्मित पुलकित नित परिमलमय,
इन्द्रधनुष सा नवरङ्गोमय,
अग जग उनका कण कण उनका,
पलभर वे निर्मम मेरे हों !

गीत संख्या 33

प्राणपिक प्रिय-नाम रे कह !
मैं मिटो निस्सीम प्रिय में,
वह गया बँध लघु हृदय में;
अब विरह की रात को तू
चिर मिलन का प्रात रे कह !
दुखअतिथि का धो चरणतल,
विश्व रसमय कर रहा जल;
यह नहीं क्रन्दन हटोले !
सजल पावस मास रे कह !
ले गया जिसको लुभा दिन,
लौटती वह स्वप्न बन बन;
है न मेरी नींद जागृति
का इसे उत्पात रे कह !
एक प्रिय-दृग-श्यामता सा,
दूसरा स्मित की विभा सा,
यह नहीं निशिदिन इन्हें
प्रिय का मधुर उपहार रे कह !
श्वास से स्पन्दन रहे झर,
लोचनों से रिस रहा उर;
दान क्या प्रिय ने दिया
निर्वाण का वरदान रे कह !
चल क्षणों का क्षणिक संचय,
बालुका से बिन्दु-परिचय,
कह न जीवन तू इसे
प्रिय का निठुर उपहास रे कह !

लाये कौन संदेश नये घन !

अम्बर गर्वित,

हो आया नत,

चिर निस्पन्द हृदय में उसके उमडे री पुलको के सावन !

चौंकी निद्रित,

रजनी अलसित,

श्यामल पुलकित कम्पित कर में दमक उठे विद्युत् के कंकण ।

दिशि का चञ्चल,

परिमल - अञ्चल,

छिन्नहार से बिखर पड़े सखि ! जुगनू के लघु हीरक के कण !

जड़ जग स्पन्दित,

निश्चल कम्पित,

फूट पड़े अवनी के संचित सपने मृदुतम अंकुर बन बन !

गेया चातक,

सकुचाया पिक,

मत्त मयूरों ने सूने में झड़ियों का दुहराया नर्तन !

सुख दुख से भर,

आया लघु उर,

मोती से उजले जलकण से छाये मेरे विस्मित लोचन !

गीत संख्या 34

तुम सो जाओ मैं गाऊँ !
मुझको सोते युग बीते
तुमको यों लोरी गाते;
अब आओ मैं पलकों में स्वप्नों से सेज बिछाऊँ !
प्रिय ! तेरे नभमन्दिर के
मणि-दीपक बुझ-बुझ जाते;
जिनका कण कण विद्युत् है मैं ऐसे प्राण जलाऊँ !
क्यों जीवन के शूलों में
प्रतिक्षण आते जाते हो ?
ठहरो सुकुमार ! गलाकर मोती पथ में फैलाऊँ !
पथ की रज में हैं अंकित
तेरे पदचिह्न अपरिचित;
मैं क्यों न इसे अञ्जन कर आँखों में आज बसाऊँ !
जल सौरभ फैलाता उर
तब स्मृति जलती है तेरी ;
लोचन कर पानी पानी मैं क्यो न उसे सिंचवाऊँ !
इन फूलो में मिल जातीं
कलियाँ तेरी माला की;
मैं क्यों न इन्हीं काँटों का संचय जग को दे जाऊँ !
अपनी असीमता देखो
लघु दर्पण में पल भर तुम;
मैं क्यों न यहाँ क्षण क्षण को धो धो कर मुकुर बनाऊँ !
हँसने में छू जाते तुम
रोने में वह सुधि आती;
मैं क्यो न जगा अणु अणु को हँसना रोना सिखलाऊँ !

तुम दुख बन इस पथ से आना !
शूलों में नित मृदु पाटल सा,
खिलने देना मेरा जीवन;
क्या हार बनेगा वह जिसने सीखा न हृदय को बिंधवाना !
वह सौरभ हूँ मैं जो उड़कर,
कलिका में लौट नहीं पाता;
पर कलिका के नाते ही प्रिय जिसको जग ने सौरभ जाना !
नित जलता रहने दो तिल तिल,
अपनी ज्वाला में उर मेरा;
इसकी विभूति में फिर आकर अपने पद-चिह्न बना जाना !
वर देते हो तो कर दो ना,
चिर आँखमिचौनी यह अपनी;
जीवन में खोज तुम्हारी है मिटना ही तुमको छू पाना !
प्रिय ! तेरे उर में जग जावे,
प्रतिध्वनि जब मेरे पी पी की;
उसको जग समझे बादल में विद्युत् का बन बन मिट जाना !
तुम चुपके से आ बस जाओ,
सुख दुख सपनों में श्वासों में;
पर मन कह देगा यह वे हैं आँखें कह देंगी पहचाना !
जड़ जग के अणुओं में स्मित से,
तुमने प्रिय जब डाला जीवन,
मेरी आँखों ने सींच उन्हें सिखलाया हँसना खिल जाना !
कुहरा जैसे घन आतप में,
यह संसृति मुझमें लय होगी;
अपने रागों से लघु वीणा मेरी मत आज जगा जाना !

जाग बेसुध जाग !

अश्रुकण से उर सजाया त्याग हीरक हार,
भीख दुख की माँगने फिर जो गया प्रतिद्वार,
शूल जिसने फूल छू चन्दन किया सन्ताप,
सुन जगाती है उसी सिद्धार्थ की पद-चाप;
करुणा के दुलारे जाग !

शङ्ख में ले नाश मुरली में छिपा वरदान,
दृष्टि में जीवन अधर में सृष्टि ले छविमान,
आ रचा जिसने स्वरों में प्यार का संसार,
गूंजती प्रतिध्वनि उसी की फिर क्षितिज के पार;
वृन्दाविपिनवाले जाग !

* * *

रात के पथहीन तम में मधुर जिसके श्वास,
फैल भरते लघु कणों में भी असीम सुवास,
कंटकों की सेज जिसकी आँसुओं का ताज,
सुभग ! हँस उठ उस प्रफुल्ल गुलाब ही सा आज,
बीती रजनि प्यारे जाग !

क्या पूजा क्या अर्चन रे ?

उस असीम का सुन्दर मन्दिर मेरा लघुतम जीवन रे !
मेरी श्वासें करतीं रहतीं नित प्रिय का अभिनन्दन रे !
पदरज को धोने उमड़े आते लोचन में जल-कण रे !
अक्षत पुलकित रोम मधुर मेरी पीड़ा का चन्दन रे !
स्नेह भरा जलता है झिलमिल मेरा यह दीपक-मन रे !
मेरे दृग के तारक में नव उत्पल का उन्मीलन रे !
धूप बने उड़ते रहते हैं प्रतिपल मेरे स्पन्दन रे !
प्रिय प्रिय जपते अधर ताल देता पलकों का नर्तन रे !

गीत संख्या 35

प्रिय ! साध्य गगन,
मेरा जीवन
यह क्षितिज बना धुँधला विराग,
नव अरुण अरुण मेरा सुहाग,
छाया सी काया वीतराग,
सुधिभीने स्वप्न रँगीले घन !
साधों का आज सुनहलापन,
घिरता विषाद का तिमिर सघन,
संध्या का नभ से मूक मिलन—
यह अश्रुमती हँसती चितवन !
लाता भर श्वासों का समीर,
जग से स्मृतियों का गन्ध धीर,
सुरभित हैं जीवन-मृत्यु-तीर,
रोमों में पुलकित कैरव-वन !
अब आदि-अन्त दोनों मिलते,
रजनी-दिन-परिणय से खिलते,
आँसू मिस हिम के कण ढुलते,
ध्रुव आज बना स्मृति का चल क्षण !
इच्छाओं के सोने से शर,
किरणों के द्रुत झीने सुन्दर,
सूने असीम नभ में चुभकर—
बन वन आते नक्षत्र-सुमन !
धर लौट चले सुख-दुःख-विहग,
तम पोंछ रहा मेरा अग जग,
छिप आज चला वह चित्रित मग,
उतरो अब पलकों में पाहुन !

रागभीनी तू सजनि निश्वास भी तेरे रँगीले !

लोचनों में क्या मदिर नव ?
देख जिसको नीड़ की सुधि फूट निकली बन मधुर रव !
भूलते चितवन गुलाबी—
में चले घर खग हठीले !

छोड़ किस पाताल का पुर ?
राग में वेसुध चपल सपने लजीले नयन में भर,
रात नभ के फूल लाई,
आँसुओं से कर सजीले !

आज इन तन्द्रिल पलों में !
उलझती अलकें सुनहली अमित निशि के कुन्तलों में !
सजनि नीलम-रज भरे
रँग चूनरी के अरुण पीले !

रेख सा लघु तिमिर-लहरी,
चरण छू तेरे हुई है सिन्धु सीमाहीन गहरी !
गीत तेरे पार जाते
बादलों की मृदु तरी ले !

कौन छायालोक की स्मृति,
कर रही रंगीन प्रिय के द्रुत पदों की अंक-संसृति ?
सिहरती पलकें किये—
देती विहँसते अधर गीले !

———

गीत संख्या 36

शून्य मन्दिर में बनूँगी आज मैं प्रतिमा तुम्हारी !

अर्चना हों शूल भोले,
क्षार दृग-जल अर्घ्य हो ले,
आज करुणा-स्नात उजला
दुःख हो मेरा पुजारी !

नूपुरों का मूक छूना,
सरव कर दे विश्व सूना,
यह अगम आकाश उतरे
कम्पनों का हो भिखारी !

लोल तारक भी अचञ्चल,
चल न मेरा एक कुन्तल,
अचल रोमों में समाई
मुग्ध हो गति आज सारी !

राग मद की दूर लाली,
साध भी इसमें न पाली,
शून्य चितवन में बसेगी
मूक हो गाथा तुम्हारी !

गीत संख्या 37

अश्रु मेरे माँगने जब
नींद में वह पास आया !
स्वप्न सा हँस पास आया !
हो गया दिव की हँसी से
शून्य में सुरचाप अंकित;
रश्मि-रोमों में हुआ
निस्पंद तम भी सिहर पुलकित;

अनुसरण करता अमा का
चाँदनी का हास आया !
वेदना का अग्निकण जब
मोम से उर में गया बस,
मृत्यु-अञ्जलि में दिया भर
विश्व ने जीवन सुधा रस !

माँगने पतझार से
हिम-बिन्दु तब मधुमास आया !
अमर सुरभित साँस देकर
मिट गये कोमल कुसुम झर;
रविकरों में जल हुए फिर;
जलद में साकार सीकर;

अंक में तब नाश को
लेने अनन्त विकास आया !

क्यों वह प्रिय आता पार नहीं ?

शशि के दर्पण में देख देख,
मैंने सुलझाये तिमिर-केश;
गूंथे चुन तारक-पारिजात,
अवगुण्ठन कर किरणें अशेष;

क्यों आज रिझा पाया उसको
मेरा अभिनव शृङ्गार नहीं ?

स्मित से कर फीके अधर अरुण,
गति के जावक से चरण लाल,
स्वप्नों से गीली पलक आँज,
सीमन्त सजा ली अश्रु-माल;

स्पन्दन मिस प्रतिपल भेज रही
क्या युग युग से मनुहार नहीं ?

मैं आज चुपा आई चातक,
मैं आज सुला आई कोकिल;
कण्टकित मौलश्री हरसिंगार,
रोके हैं अपने श्वास शिथिल !

सोया समीर नीरव जग पर
स्मृतियों का भी मृदु भार नहीं !

रूँधे है सिहरा सा दिगन्त,
सित पाटलदल से मृदु बादल;
उस पार रुका आलोक-यान,
इस पार प्राण का कोलाहल !

बेसुध निद्रा है आज बुने—
जाते श्वासों के तार नहीं !

दिनरात-पथिक थक गये लौट,
फिर गये मना कर निमिष हार;
पाथेय मुझे सुधि मधुर एक,
है विरह-पंथ सूना अपार !

फिर कौन कह रहा है सूना
अब तक मेरा अभिसार नहीं ?

———

गीत संख्या 38

क्यों मुझे प्रिय हों न बन्धन !

बन गया तम-सिन्धु का आलोक सतरङ्गी पुलिन सा;
रजभरे जगबाल से है अंक विद्युत् का मलिन सा;
स्मृति पटल पर कर रहा अब
वह स्वयं निज रूप-अंकन !

चाँदनी मेरी अमा का, भेंटकर अभिषेक करती;
मृत्यु-जीवन के पुलिन दो आज जागृति एक करती;
हो गया अब दूत प्रिय का
प्राण का सन्देश, स्पन्दन !

सजनि मैंने स्वर्णपिञ्जर में प्रलय का वात पाला;
आज पुंजीभूत तम को कर बना डाला उजाला;
तूल से उर में समा कर
हो रही नित ज्वाल चन्दन !

आज विस्मृति-पंथ में निधि से मिले पदचिह्न उनके;
वेदना लौटा रही है विफल खाये स्वप्न गिनके;
घुल हुई इन लोचनों में
चिर प्रतीक्षा पूत अञ्जन !

आज मेरा खोज-खग गाता चला लेने बसेरा;
कह रहा सुख अश्रु से 'तू है चिरन्तन प्यार मेरा';
बन गए बीते युगों की
विकल मेरे श्वास स्पन्दन !

बीन-बन्दी तार की झङ्कार है आकाशचारी;
धूलि के इस मलिन दीपक से बँधा है तिमिरहारी;

बाँधती निर्बन्ध को मैं
बन्दिनी निज बेड़ियाँ गिन !

नित सुनहली साँझ के पद से लिपट आता अँधेरा;
पुलक पंखी विरह पर उड़ आ रहा है मिलन मेरा;

कौन जाने है बसा उस पार
तम या रागमय दिन !

गीत संख्या 39

जाने किस जीवन की सुधि ले
लहराती आती मधु-बयार !

रञ्जित कर दे यह शिथिल चरण ले नव अशोक का अरुण राग,
मेरे मण्डन को आज मधुर ला रजनीगन्धा का पराग,
यूथी की मीलित कलियो से
अलि दे मेरी कबरी सँवार !

पाटल के सुरभित रङ्गों से रँग दे हिम सा उज्ज्वल दुकूल,
गुथ दे रशना में अलि-गुञ्जन से पूरित झरते बकुल-फूल,
रजनी से अञ्जन माँग सजनि
दे मेरे अलसित नयन सार !

तारक-लोचन से सींच सींच नभ करता रज को विरज आज,
बरसाता पथ में हरसिंगार केशर से चर्चित सुमन-लाज,
कण्टकित रसालो पर उठता—
है पागल पिक मुझको पुकार !
लहराती आती मधु बयार !

गीत संख्या 40

प्रिय-पथ के यह शूल मुझे अलि प्यारे ही हैं !

हीरक सी वह याद
बनेगा जीवन सोना,
जल जल तप तप किन्तु
खरा इसको है होना !

चल ज्वाला के देश जहाँ अङ्गारे ही हैं !

तम-तमाल ने फूल
गिरा दिन-पलकें खोलीं,
मैंने दुख में प्रथम
तभी सुख-मिश्री घोली !

ठहरें पलभर देव अश्रु यह खारे ही हैं !

ओढ़े मेरी छाँह
रात देती उजियाला,
रजकण मृदु पद चूम
हुए मुकुलों की माला !

मेरा चिर इतिहास चमकते तारे ही हैं !

आकुलता ही आज
हो गई तन्मय राधा,
विरह बना आराध्य
द्वैत क्या कैसी बाधा !

खोना पाना हुआ जीत वे हारे ही हैं !

गीत संख्या 41

मेरी है पहेली बात !

रात के झीने सिताञ्चल-
से बिखर मोती बने जल,
स्वप्न पलकों में बिझर झर
प्रात होते अश्रु केवल !

सजनि मैं उतनी करुण हूँ, करुण जितनी रात !

मुस्करा कर राग मधुमय
वह लुटाता पी तिमिर विष,
आँसुओं का क्षार पी मैं
बाँटती नित स्नेह का रस !

सुभग मैं उतनी मधुर हूँ, मधुर जितना प्रात !

ताप-जर्जर विश्व उर पर—
तूल से घन छा गये भर;
दुःख से तप हो मृदुलतर
उमड़ता करुणा भरा उर !

सजनि मैं उतनी सजल, जितनी सजल बरसात !

मेरा सजल मुख देख लेते !
यह करुण मुख देख लेते !

नेनु शूलों का बना बाँधा विरह-वारीश का जल;
फूल सी पलकें बनाकर प्यालियाँ बाँटा हलाहल;

दुःखमय सुख,
सुखभरा दुख,
कौन लेता पूछ जो तुम
ज्वाल-जल का देश देते ?

नयन की नीलम-तुला पर मोतियों से प्यार तोला;
कर रहा व्यापार कब से मृत्यु से यह प्राण भोला !

भ्रान्तिमय कण,
श्रान्तिमय क्षण,
थे मुझे वरदान जो तुम
माँग ममता शेष लेते !

पद चले जीवन चला पलकें चलीं स्पन्दन रही चल,
किन्तु चलता जा रहा मेरा क्षितिज भी दूर धूमिल !

अङ्ग अलसित,
प्राण विजड़ित,
मानती जय जो तुम्हीं
हँस हार आज अनेक देते !

धुल गई इन आँसुओं में देव जाने कौन हाला;
झूमता है विश्व पी पी घूमती नक्षत्र-माला !

माध है तुम,
बन सघन तम,
सुरँग अवगुण्ठन उठा
गिन आँसुओ की रेख लेते !

शिथिल चरणो के थकित इन नूपुरों की करुण रुनझुन
विरह का इतिहास कहती जो कभी पाते सुभग सुन,
चपल पग धर,
आ अचल उर !
वार देते मुक्ति, खो
निर्वाण का संदेश देते !

गीत संख्या 42

विरह का घड़ियाँ हुईं अलि मधुर मधु की यामिनी सी !
दूर के नक्षत्र लगते पुतलियों से पास प्रियतर;
शून्य नभ का मूकता में गूँजता आह्वान का स्वर;
आज है निःसामना
लघु प्राण की अनुगामिनी सी !

एक स्पन्दन कह रहा है अकथ युग युग की कहानी;
हो गया स्मित में मधुर इन लोचनों का क्षार पानी;
मूक प्रति निश्वास है
नव स्वप्न की अनुरागिनी सी !

सजनि ! अन्तर्हित हुआ है 'आज' में धुँधला विफल 'कल';
हो गया है मिलन एकाकार मेरे विरह में मिल,
राह मेरी देखती
स्मृति अब निराश पुजारिनी सी !

फैलते हैं सांध्य नभ में भाव ही मेरे रँगीले;
तिमिर की दीपावली हैं रोम मेरे पुलक गीले;
वन्दिनी बनकर हुई
मैं बन्धनों की स्वामिनी सी !

गीत संख्या 43

शलभ मैं शापमय वर हूँ ! किसी का दीप निष्ठुर हूँ !
ताज है जलती शिखा
चिनगारियाँ शृङ्गार-माला;
ज्वाल अक्षय कोष सी
अंगार मेरी रङ्गशाला;
नाश में जीवित किसी की साध सुन्दर हूँ !
नयन में रह किन्तु जलती
पुतलियाँ आगार होंगी:
प्राण में कैसे बसाऊँ
कठिन अग्नि समाधि होगी!
फिर कहाँ पालूँ तुझे मैं मृत्यु-मन्दिर हूँ !
हो रहे झर कर दृगों से
अग्नि-कण भी क्षार शीतल
पिघलते उर से निकल
निश्वास बनते धूम श्यामल;
एक ज्वाला के बिना मैं राख का घर हूँ !
कौन आया था न जाने
स्वप्न में मुझको जगाने;
याद में उन अँगुलियों के
हैं मुझे पर युग बिताने;
रात के उर में दिवस की चाह का शर हूँ !
शून्य मेरा जन्म था
अवसान है मुझको सबेरा;
प्राण आकुल के लिए
संगी मिला केवल अँधेरा;
मिलन का मत नाम ले मैं विरह में चिर हूँ !

मैं नीर भरी दुख की बदली !
स्पन्दन में चिर निस्पन्द बसा,
क्रन्दन में आहत विश्व हँसा,
नयनों में दीपक से जलते
पलकों में निर्झरिणी मचली !

मेरा पग पग संगीत भरा,
स्वासों से स्वप्न पराग झरा,
नभ के नवरँग बुनते दुकूल
छाया में मलय बयार पली !

मैं क्षितिज-भ्रुकुटि पर घिर धूमिल,
चिन्ता का भार बनी अविरल,
रज-कण पर जल-कण हो बरसी
नवजीवन-अंकुर बन निकली !

पथ को न मलिन करता आना,
पदचिह्न न दे जाता जाना,
सुधि मेरे आगम की जग में
सुख की सिहरन हो अंत खिली !

विस्तृत नभ का कोई कोना,
मेरा न कभी अपना होना,
परिचय इतना इतिहास यही
उमड़ी कल थी मिट आज चली !

गीत संख्या 44

चिर सजग आँखें उनींदी आज कैसा व्यस्त बाना !
जाग तुझको दूर जाना !

अचल हिमगिरि के हृदय में आज चाहे कम्प होले,
या प्रलय के आँसुओं में मौन अलसित व्योम रो ले;
आज पी आलोक को डोले तिमिर की घोर छाया,
जाग या विद्युत्-शिखाओं में निठुर तूफ़ान बोले !
पर तुझे है नाशपथ पर चिह्न अपने छोड़ आना !

बाँध लेंगे क्या तुझे यह मोम के बन्धन सजीले ?
पंथ की बाधा बनेंगे तितलियों के पर रँगीले ?
विश्व का क्रन्दन भुला देगी मधुप की मधुर गुनगुन,
क्या डुबा देंगे तुझे यह फूल के दल ओस-गीले ?
तू न अपनी छाँह को अपने लिए कारा बनाना !

वज्र का उर एक छोटे अश्रुकण में धो गलाया,
दे किसे जीवन-सुधा दो घूँट मदिरा माँग लाया ?
सो गई आँधी मलय की वात का उपधान ले क्या ?
विश्व का अभिशाप क्या चिर नींद बनकर पास आया ?
अमरता-सुत चाहता क्यों मृत्यु को उरमें बसाना ?

कह न ठंढी साँस में अब भूल वह जलती कहानी,
आग हो उर में तभी दृग में सजेगा आज पानी;
हार भी तेरी बनेगी मानिनी जय की पताका !
राख क्षणिक् पतंग की है अमर दीपक की निशानी !
है तुझे अंगार-शय्या पर मृदुल कलियाँ बिछाना !

गीत संख्या 45

कीर का प्रिय आज पिञ्जर खोल दो !

हो उठी हैं चंचु छूकर,
तीलियाँ भी वेणु सस्वर;
बन्दिनी स्पन्दित व्यथा ले,
सिहरता जड़ मौन पिञ्जर !

आज जड़ता में इसी की बोल दो !

जग पड़ा छू अश्रु धारा,
हत परों का विभव सारा;
अब अलस बन्दी युगों का—
ले उड़ेगा शिथिल कारा !

पङ्ख पर वे सजल सपने तोल दो !

क्या तिमिर कैसी निशा है !
आज विदिशा ही दिशा है;
दूर-खग आ निकटता के—
अमर बन्धन में बसा है !

गलय-घन में आज राका घोल दो !

चपल पारद सा विकल तन,
सजल नीरद सा भरा मन,
नाप नीलाकाश ले जो—
बेड़ियों का माप यह बन,

एक किरण अनन्त दिन की मोल दो !

गीत संख्या 46

प्रिय चिरन्तन है सजनि
क्षण क्षण नवीन सुहागिनी मैं !

श्वास में मुझको छिपाकर वह असीम विशाल चिर घन,
शून्य में जब छा गया उसकी सजीली साध सा बन,
छिप कहाँ उसमें सकी
बुझ बुझ जली चल दामिनी मैं !

छाँह को उसकी सजनि नव आवरण अपना बनाकर,
धूलि में निज अश्रु बोने में पहर सूने बिताकर,
प्रात में हँस छिप गई
ले छलकते दृग यामिनी मैं !

मिलन-मन्दिर में उठा दूँ जो सुमुख से सजल 'गुण्ठन,
मैं मिटूँ प्रिय में मिटा ज्यों तप्त सिकता में सलिल-कण,
सजनि मधुर निजत्व दे
कैसे मिलूँ अभिमानिनी मैं !

दीप सी युग युग जलूँ पर वह सुभग इतना बता दे,
फूँक से उसकी बुझूँ तब क्षार ही मेरा पता दे !
वह रहे आराध्य चिन्मय
मृण्मयी अनुरागिनी मैं !

सजल सीमित पुतलियाँ पर चित्र अमिट असीम का वह,
चाह एक अनन्त बसती प्राण किन्तु असीम सा यह,
रजकणों में खेलती किस
विरज विधु की चाँदनी मैं ?

गीत संख्या 47

सखि मैं हूँ अमर सुहाग भरी !
प्रिय के अनन्त अनुराग भरी !
किसको त्यागूँ किसको माँगूँ,
हैं एक मुझे मधुमय विषमय;
मेरे पद छूते ही होते,
काँटे कलियाँ प्रस्तर रसमय !
पालूँ जग का अभिशाप कहाँ
प्रतिरोमों में पुलकें लहरीं !
जिसको पथ-शूलों का भय हो,
वह खोजे नित निर्जन गह्वर;
प्रिय के सन्देशों के वाहक,
मैं सुख-दुख भेटूँगी भुजभर;
मेरी लघु पलको से छलकी
इस कण कण में ममता बिखरी !
अरुणा ने यह सीमन्त भरी,
सन्ध्या ने दी पद में लाली;
मेरे अंगों का आलेपन—
करती राका रच दीवाली !
जग के दागों को धो धो कर
होती मेरी छाया गहरी !
पद के निक्षेपों से रज में—
नभ का वह छायापथ उतरा
श्वासों से घिर आती बदली
चितवन करती अंधकार हरा !
जब मैं मरु में भरने लाती
दुख से, रीती जीवन-गगरी !

सो रहा है विश्व पर प्रिय तारकों में जागता है !
नियति बन कुशली चितेरा—
रँग गई सुखदुख रँगों से
मृदुल जीवन पात्र मेरा !
स्नेह की देती सुधा भर अश्रु खारे माँगता है !
धूपछाँहीं विरह-वेला,
विश्व-कोलाहल बना वह
ढूँढ़ती जिसको अकेला;
छाँह दृग पहचानते पदचाप यह उर जानता है !
रङ्गमय है देव दूरी !
छू तुम्हें रह जायगी यह
चित्रमय क्रीड़ा अधूरी !
दूर रह कर खेलना पर मन न मेरा मानता है !
वह सुनहला हास तेरा—
अंकभर घनसार सा
उड़ जायगा अस्तित्व मेरा !
मूँद पलकें रात करती जब हृदय हठ ठानता है !
मेघ-रूँधा अजिर गीला,
टूटता हा इन्दु-कन्दुक
रवि झुलसता लाल पीला !
यह खिलौने और यह उर ! प्रिय नई असमानता है !

गीत संख्या 48

हे चिर महान्!
तह स्वर्णरश्मि छू श्वेत भाल,
बरसा जाती रङ्गीन हास;
सेली बनता है इन्द्रधनुष,
परिमल मल मल जाता बतास!

पर रागहीन तू हिमनिधान!

नभ में गर्वित झुकता न शीश,
पर अंक लिये है दीन क्षार;
मन गल जाता नत विश्व देख,
तन सह लेता है कुलिश-भार!

कितने मृदु कितने कठिन प्राण!

टूटी है कब तेरी समाधि,
झञ्झा लौटे शत हार हार;
वह चला दृगों से किन्तु नीर
सुनकर जलते कण की पुकार!

सुख से विरक्त दुख में समान!

मेरे जीवन का आज मूक,
तेरी छाया से हो मिलाप;
तन तेरी साधकता छू ले,
मन ले करुणा की थाह नाप!
उर में पावस दृग में विहान!

गीत संख्या 49

मैं सजग चिर साधना ले !

सजग प्रहरी से निरन्तर,
जागते अलि रोम निर्भर;
निमिष के बुद्बुद् मिटाकर,
एक रस है समय-सागर !

हो गई आराध्यमय मैं विरह की आराधना ले !

मूँद पलकों में अचञ्चल,
नयन का जादू भरा तिल,
दे रही हूँ अलख अविकल—
को सजीला रूप तिल तिल !

आज वर दो मुक्ति आवे बन्धनों की कामना ले !

विरह का युग आज दीखा,
मिलन के लघु पल सरीखा;
दुःखसुख में कौन तीखा;
मैं न जानी औ' न सीखा !

मधुर मुझको हो गये सब मधुर प्रिय की भावना ले !

गीत संख्या 50

अलि मैं कण कण को जान चली !
सबका क्रन्दन पहचान चली !

कुछ दृग में हीरक-जल भरते,
कुछ चितवन इन्द्रधनुष करते,
टूटे सपनों के मनकों से
कुछ सूखे अधरों पर झरते !
जिस मुक्ताहल से मेघ भरे,
जो तारों मे तृण में उतरे,
मैं नभ के रज के रसविष के
आँसू के सब रँग जान चली !
दुख को कर सुख-आख्यान चली !

जिसका मीठा तीखा दंशन,
अंगों में भरता सुखसिहरन,
जो पग में चुभकर कर देता
जर्जर मानस चिर आहत मन !

जो मृदु फूलों के स्पन्दन से,
जो पैने एकाकीपन से,
मैं उपवन-निर्जन-पथ के हर
कण्टक का मृदु मन जान चली !
गति का दे चिर वरदान चली !

जो जल में विद्युत्-प्यास भरा,
जो आतप में जल जल निखरा,
जो झरते फूलो पर देता
नित चन्दन सी ममता बिखरा !

जो आँसू से धुल धुल उजला,
जो निष्ठुर चरणों का कुचला,
मैं मरु-उर्वर के कसक भरे
अणु अणु का कम्पन जान चली !
प्रति पग को कर लयवान चली !

नभ मेरा सपना स्वर्ण-रजत,
जग संगी अपना चिर परिचित,
यह शूल फूल का चिर नूतन
पथ मेरी साधो से निर्मित !

इन आँखो के रस से गीली,
रज भी है दिव से गीली !
मैं सुख से चंचल दुखबोझिल
क्षण क्षण का जीवन जान चली !
मिटने को कर निर्माण चली !

गीत संख्या 51

मोम सा तन घुल चुका अब दीप सा मन जल चुका है !'

विरह के रंगीन क्षण ले,
अश्रु के कुछ शेष कण ले,
बरुनियो में उलझ बिखरे स्वप्न के फीके सुमन ले

खोजने फिर शिथिलपग
निश्वास-दूत निकल चुका है !

चल पलक हैं निर्निमेषी,
कल्प पल सब तिमिरवेषी,
आज स्पन्दन भी हुई उर के लिए अज्ञातदेशी !

चेतना का स्वर्ण जलती
वेदना में गल चुका है !

झर चुके तारक-कुसुम जब,
रश्मियो के रजत पल्लव,
सन्धि में आलोक-तम की क्या नहीं नभ जानता तब,

पार से अज्ञात वासन्ती—
दिवस-रथ चल चुका है !

खोल कर जो दीप के दृग,
कह गया 'तम में बढ़ा पग',
देख श्रम-धूमिल उसे करते निशा की साँस जगमग,

क्या न आ कहता वही
'सो याम अन्तिम ढल चुका है' ?

अन्तहीन विभावरी है,
पास अङ्गारक-तरी है,
तिमिर की तटिनी क्षितिज की कूल-रेख डुबा भरी है!
शिथिल कर से सुभग
सुधि-पतवार आज बिछल चुका है!

अब कहो संदेश है क्या?
और ज्वाल विशेष है क्या?
अग्निपथ के पार चन्दन-चाँदनी का देश है क्या?
एक इंगित के लिए
शतवार प्राण मचल चुका है!

———

गीत संख्या 52

पथ मेरा निर्वाण बन गया !
प्रति पग शत वरदान बन गया !

आज थके चरणों ने सूने तम में विद्युत् लोक बसाया;
बरसाती है रेणु चाँदनी की यह मेरी धूमिल छाया;
प्रलय-मेघ भी गले मोतियों—
का हिमतरल उफान बन गया !

अञ्जनवदना चकित दिशाओं ने चित्रित अवगुण्ठन डाले;
रजनी ने मरकतवीणा पर हँस किरणों के तार सँभाले;
मेरे स्पन्दन से झङ्का का
हरहर लय-सन्धान बन गया !

पारद सी गल हुईं शिलायें नभ चन्दनचर्चित आँगन सा;
अगराग, घनसार हुई रज आतप सौरभ-आलेपन सा;
शूलों का विष कलियों के
गीले मधुपर्क समान बन गया !

मिट मिट कर हर साँस लिख रही शतशत मिलनविरह का लेखा;
निज को खोकर निमिष आँकते अनदेखे चरणों की रेखा;
पल भर का वह स्वप्न तुम्हारी
युग युग की पहचान बन गया !

देते हो तुम फेर हास मेरा निज करुणा-जल-कण से भर;
लौटाते हो अश्रु मुझे तुम अपनी स्मित से रंगोंमय कर;
आज मरण का दूत तुम्हें छू
मेरा पाहुन प्राण बन गया !

गीत संख्या 53

हुए शूल अक्षत मुझे धूलि चन्दन !
अगरुधूम सी साँस सुधिगन्धसुरभित,
बनी स्नेह-लौ आरती चिर अकम्पित,

हुआ नयन का नीर अभिषेक-जलकण !
सुनहले सजीले रंगीले धवीले,
हसित कण्टकित अश्रु-मकरन्द गीले,

बिखरते रहे स्वप्न के फूल अनगिन !
असितश्वेत गन्धर्व जो सृष्टि-लय के
दृगों को पुरातन अपरिचित हृदय के,

सजग यह पुजारी मिले रात औ' दिन !
परिधिहीन रंगोभरा व्योम-मन्दिर,
चरण-पीठ भू का व्यथासिक्त मृदु उर,

ध्वनित सिन्धु में है रजत शंख का स्वन
कहो मत प्रलय द्वार पर रोक लेगा,
वरद मैं मुझे कौन वरदान देगा ?

बना कब सुरभि के लिए फूल बन्धन ?
व्यथाप्राण हूँ नित्य सुख का पता मैं,
धुला ज्वाल में मोम का देवता मैं,

सृजन-श्वास हो क्यों गिनूँ नाश के क्षण ?

यह मन्दिर का दीप इसे नीरव जलने दो !
रजत शंख-घड़ियाल स्वर्ण वंशी-वीणा-स्वर,
गए आरती-वेला को शत शत लय से भर,
जब था कल कंठों का मेला,
विहँसे उपल तिमिर था खेला !
अब मन्दिर में इष्ट अकेला;
इसे अजिर का शून्य गलाने को गलने दो !
चरणों से चिन्हित अलिन्द की भूमि सुनहली,
प्रणत शिरो के अंक लिए चन्दन की दहली;
झरे सुमन बिखरे अक्षत सित,
धूप अर्घ्य नैवेद्य अपरिमित,
तम में सब होंगे अन्तर्हित
सबकी अर्चितकथा इसी लौ में पलने दो !
पल के मनके फेर पुजारी विश्व सो गया,
प्रतिध्वनि का इतिहास प्रस्तरों बीच खो गया;
साँसों की समाधि सा जीवन,
मसि-सागर सा पंथ गया बन,
रुका मुखर कण कण का स्पन्दन,
इस ज्वाला में प्राण-रूप फिर से ढलने दो !
झंझा है दिग्भ्रान्त रात की मूर्च्छा गहरी,
आज पुजारी बने, ज्योति का यह लघु प्रहरी,
जब तक लौटे दिन की हलचल,
तब तक यह जागेगा प्रतिपल,
रेखाओं में भर - आभा-जल,
दूत साँझ का इसे प्रभाती तक चलने दो !

गीत संख्या 54

पूछता क्यों शेष कितनी रात ?
अमर सम्पुट में ढला तू,
छू नखों की कान्ति चिर
संकेत पर जिनके जला तू,
स्निग्ध सुधि जिनकी लिए कज्जल-दिशा में धँस चला तू
परिधि बन घेरे तुझे वे उँगलियाँ अवदात !
झर गए खद्योत सारे,
तिमिर-वात्याचक्र में
सब पिस गए अनमोल तारे,
बुझ गई पवि के हृदय में काँप कर विद्युत्-शिखा रे !
साथ तेरा चाहती एकाकिनी बरसात !
व्यंगमय है क्षितिज-घेरा,
प्रश्नमय हर कण निठुर सा
पूछता परिचय, बसेगा;
आज हो उत्तर सभी का ज्वालवाही श्वास तेरा
छीजता है इधर तू उस ओर बढ़ता प्रात !
प्रणत लौ की आरती ले,
धूमलेखा स्वर्ण-अक्षत
नील-कुमकुम वारती ले,
मूक प्राणों में व्यथा की स्नेह-उज्ज्वल भारती ले,
मिल अरे बढ़ आ रहे यदि प्रलय झंझावात !
कौन भय की बात !